कुण्डलिनी का स्वरूप एवं प्रयोग
- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

साधना विज्ञान के क्रमिक सोपानों पर चढ़ते-चढ़ते जब थोड़ा और ऊपर बढ़ते हैं तो कुण्डलिनी योग का उच्चस्तरीय साधना क्रम के अन्तर्गत नाम लिया जाता है। इस साधना विशेष के विषय में जन-मानस में बड़े व्यापक स्तर पर भ्रान्तियां प्रचलित हैं। यह अपरिमित ऊर्जा केन्द्र जो मानवी काय-कलेवर के अन्तराल में सूक्ष्म रूप में अवस्थित होता है, कितना शक्तिशाली हैं व विभिन्न साधना प्रक्रियाओं के माध्यम से इस योग साधना को संपादित कर कितनी कुछ सिद्धियाँ-विभूतियाँ हस्तगत की जा सकती हैं, इस पक्ष पर विस्तृत विवेचन करने से पूर्व इस ध्यान योग की एक प्राथमिक जानकारी ले लेना समीचीन होगा।

योग के 84 प्रकार बताये गये हैं परन्तु महत्वपूर्ण उच्चस्तरीय क्रम में गिने जाने योग्य तो मात्र बारह हैं। राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राणयोग, ऋजुयोग, नादयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, मन्त्रयोग तथा तन्त्रयोग। इन्हें प्रकारान्तर से कुण्डलिनी जागरण साधना का ही माध्यम माना जाता है। इस प्रकार महत्वपूर्ण साधनाओं का निचोड़ एक ही पद्धति में समाविष्ट है और यही उसकी विशेषता है।

तन्त्र और योग इन दोनों रूपों में साधना के वट वृक्ष की दो प्रधान शाखाएँ हैं। एक वाम मार्ग आगम या भौतिक सिद्धियों का क्षेत्र कहलाता है तो दूसरा दक्षिण मार्ग, निगम या आत्मिक ऋद्धियों की विधा है। तन्त्र पक्ष को मानने वाले कहते हैं शरीर और मन में अजस्र शक्ति का भाण्डागार छिपा पड़ा है। हठयोग प्रधान तीव्र स्तर के साधना कर्मकाण्डों से इस शक्ति स्रोत को कुरेदा, उभारा और विकसित किया जाता है। इससे साधक की भौतिक सामर्थ्य तो बढ़ती ही है आत्मिक उत्थान का पथ भी प्रशस्त होता चलता है । इस मार्ग के श्रेयार्थी

कर्मकाण्डों के माध्यम से ही शरीर और मन को साधने की चर्चा करते हैं।

दूसरा पक्ष सौम्य हैं। दक्षिण मार्ग या निगम पथ को मानने वाले भौतिक प्रगति को कम तथा आत्मिक प्रगति को प्रमुख मानते हैं। हठयोग के स्थान पर वे ध्यानयोग को प्रमुखता देते हैं तथा इसी शक्ति केन्द्र को विकसित कर अनन्त आनन्द तथा विभूतियों की प्राप्ति इससे होती बताते हैं। इन दोनों ही मार्गों का समन्वय सन्तुलन जिस एक साधना पद्धति में है उसका नाम है कुण्डलिनी योग। जहाँ ब्रह्मविद्या के पथ पर चलकर लक्ष्य की ओर बढ़ने वालों के प्रसुप्त के जागरण का लक्ष्य इससे सधता है, वहीं तन्त्र विज्ञानियों द्वारा इच्छित भौतिक प्रगति की सम्भावनाएँ भी इससे पूरी होती हैं। दोनों पक्षों के समन्वय से बनी यह उच्चस्तरीय योग साधना अपने आप में पूर्ण व समग्र है। सर्वप्रथम साधनों को इस योग साधना पर तन्त्र की मोहर लगने के कारण फैली भ्रान्तियों को मिटाकर इसकी प्राथमिक जानकारी ले लेना अभीष्ट होगा।

योग साधना के तत्त्ववेत्ता बताते हैं कि शरीर अपने आप में अद्भुत अपरिमित शक्ति का भण्डार है। नित्य ही यह ब्राह्मी अनुदान के माध्यम से शक्ति अवशोषित करता तथा उपार्जन योग्य प्राणशक्ति को पचा व संग्रहीत कर शेष वातावरण में छोड़ देता है। उसकी शक्ति जिन प्रयोजनों में अनावश्यक अपव्यय होती रहती है, उसे यदि बचा लिया जाय और उसे सही दिशा में नियोजित कर दिया जाय तो साधना का प्रयोजन पूरा हो जाता है व प्रस्तुत शक्तियों को उभारना सम्भव बन पड़ता है। शक्ति ग्रहण का माध्यम तो प्राणाकर्षण प्रक्रिया है जो स्थूल रूप से श्वास प्रक्रिया के माध्यम से, पाचन प्रक्रिया के माध्यम से तथा सूक्ष्म रूप से विचार तरंगों व सूक्ष्म प्राण प्रवाह के रूप में सतत् सम्पादित होती रहती है। शक्ति अपव्यय की जानकारी होना

बहुत अनिवार्य है। मनीषी तीन मार्ग बताते हैं जहाँ से सर्वाधिक शक्ति-क्षरण होता है। प्रथम तो जीविका उपार्जन के अनेकानेक प्रयोजन जिनमें परिवार का संचालन, सुव्यवस्था, श्रम, नित्य कर्म जन सम्पर्क आता है। दूसरा मार्ग जहाँ से शक्ति का सर्वाधिक अपव्यय होता है, मानवी मन है जो पढ़ता है, सोचता है, अनेकानेक आवेगों को जन्म देता है। इन्द्रिय भोग से जो शक्ति क्षरण होती है उसका प्रेरणा स्रोत भी मन है। शोक-भय, तनाव, अहंता-तृष्णा-आवेश जैसे आवेग मस्तिष्क की ही देन हैं जो बहुसंख्यक व्यक्तियों के शक्ति भण्डार को खाली कर देते हैं। तीसरा अन्तिम अपव्यय छिद्र है-शरीर का स्वचालित (आटोनॉमिक) स्नायु संस्थान। अनचाहे बिना हमारे नियन्त्रण के जो गतिविधियाँ शरीर में चलती हैं, रक्त, संचार से लेकर रस स्रावों तथा आहार पाचन से लेकर विसर्जन प्रक्रिया तक के मूल में अचेतन मस्तिष्क की गतिविधियों का ही प्राधान्य होता है। ये प्रेरणाएँ इतनी तीव्र होती हैं कि इन पर नियन्त्रण अनसधे मन व साधारण काया वाले मनुष्य से सम्भव नहीं। चाहते हुए भी शरीर व मन पर नियमन बन नही पाता व संग्रहीत शक्ति समाप्त होती चली जाती।

शरीर, मस्तिष्क व नाड़ी संस्थान ये तीन जीवनी शक्ति उत्सर्जन के केन्द्र है। अलग-अलग जीवधारियों में विशिष्ट अनुपात में इन तीनों से सतत अधोगामी प्रवाह रहता है। मात्र मनुष्य को ही यह विशेषता प्राप्त है कि इन तीनों पर आंशिक नियन्त्रण स्थापित कर इस संग्रहीत ऊर्जा को विशिष्ट प्रयोजनों में लगा सकता है। पानी रोककर बाँध बना लेना ही काफी नहीं है। उसे ऊँचाई से नीचे गिराकर शक्तिशाली टर्बाइन्स उस प्रवाह से चलाये जाते हैं तो अक्षय विद्युत भण्डार उसी साधारण से जल से उफन पड़ता है। शक्तियों के प्रवाह को रोक लेने भर से काम नहीं चलता उन्हें सुनियोजित करना होता है ताकि अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सके। योग साधना द्वारा यही प्रक्रिया सम्पादित की

जाती है। जहाँ तन्त्र मार्ग कहता है कि अचेतत मन नाड़ी संस्थान पर नियन्त्रण कर महासर्पिणी कुण्डलिनी को जगाया जाय, वहीं दक्षिण मार्ग की मान्यता है कि अचेतन मन पर नियन्त्रण तो स्थूल शक्तियों का नियमन पंच भौतिक क्रिया-कलापों का सम्पादन भर है। इससे तो मात्र सांसारिक प्रयोजन पूरे होते हैं। इससे जन्म लेने वाले चमत्कार कौतूहल भर दिखाते हैं, आत्मिक प्रगति की दिशा में सहायक नहीं होते।

दक्षिण मार्ग व वाम मार्ग का सन्तुलन बिठाते हुए कुण्डलिनी योग प्रतिपादन करता है कि मौन, ब्रह्मचर्य, उपवास, विश्राम आदि से जहाँ शरीर शक्ति के व्यय को बचा सकते हैं, प्रत्याहार धारणा-ध्यान, समाधि आदि के द्वारा मन के कारण होने वाले शक्ति क्षरण को रोका जा सकता है। उसी प्रकार अचेतन नाड़ी संस्थान को सुनियोजित कर इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के प्रवाहों का नियमन कर कुण्डलिनी जागरण का प्रबल पुरुषार्थ सम्पादित किया जा सकता है। यही शक्ति का वास्तविक सुनियोजन है। जहाँ वाम मार्ग शरीर, मन की गतिविधियों को महत्व नहीं देता वहां कुण्डलिनी योग संयम जन्य सामर्थ्य को प्रसुप्त की जागृति में अचेतन को मोड़ देकर, अधोगामी प्रवाह को मोड़ देकर अधोगामी प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाने की सम्भावनाओं का उद्घाटन करता है।

कुण्डलिनी योग की एनाटॉमी का जब जिक्र करते है तो यह तथ्य हृदयंगम किया जाना जरूरी है कि अध्यात्म शास्त्र में जहाँ भी शरीर विज्ञान का वर्णन आया है, वह विशुद्ध रूप से सूक्ष्म संरचना की विवेचना है। स्थूल काया में तो उसकी प्रतीक छाया ही देखी जा सकती है-उन्हें एक प्रकार का सिम्बॅल भर माना जा सकता है है। शरीर विच्छेदन कर यदि षटचक्रों को ढूँढ़ने लगे तो यह प्रयास निराशाप्रद तथा हास्यास्पद होगा। सूक्ष्म विद्युत्प्रवाहों को, भँवर चक्रवातों

को इन चर्म चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। स्थूल अंगों से तो मात्र उन सूक्ष्म शक्तियों की निकटता का आभास मात्र मिलता है।

मानवी काय सत्ता में दो ध्रुव प्रदेश हैं जैसे पृथ्वी पर उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव है। उत्तरी शक्ति केन्द्र मस्तिष्क के बीचों-बीच स्थित ब्रह्मरन्ध है तो दक्षिणी शक्ति केन्द्र जन्द्रनेन्द्रिय मूल में स्थित मूलाधार। आध्यात्मिक संरचना की दृष्टि से इन दो ऊर्जा केन्द्रों का ही सर्वाधिक महत्व है। त्वचा, आँखें, वाणी, उंगलियाँ व जननेन्द्रियों का बाह्य स्वरूप वे अवयव विशेष हैं, जहाँ से शक्ति धाराएँ बाहर की ओर निस्सृत होती हैं व आसपास के वातावरण को प्रभावित करती हैं।

पृथ्वी पर जो प्राण रूपी जीवन है उसका मूल स्रोत हैं ब्रह्माण्ड में संव्याप्त चेतना प्रवाह। पृथ्वी भी सांस लेती, अवशोषित करती व छोड़ती है। उत्तरी ध्रुव से जो भी आवश्यक है, ग्रहण कर लिया जाता है तथा अवशिष्ट दक्षिणी ध्रुव से होकर अन्तरिक्ष में वापस फेंक दिया जाता है। इसी कारण हिमाच्छादित इन ध्रुव प्रदेशों को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से तो इनकी महत्ता सर्वविदित है ही। यदि यहां थोड़ा सा भी हेर-फेर होने लगे तो उसका प्रभाव मौसम की प्रतिकूलता के रूप में सारे पृथ्वी के वायु मण्डल पर होता है। ठीक इसी प्रकार मानवी काया के दोनों ध्रुव चेतना क्षेत्र में अपनी भूमिका सम्पादित करते हैं। इन दोनों ध्रुवों को मिलाने पर सुषुम्ना रूपी जो प्रवाह मेरुदण्ड क्षेत्र में बनता है वह सारा स्वरूप मिलकर कुण्डलिनी शक्ति का सूक्ष्म ढाँचा बनाता है। कहा जाता है कि यह शक्ति प्रवाह सर्पिणी की तरह है जिसकी पूँछ नीचे है व फन ऊपर। मल-मूत्र छिद्रों के मध्य अवस्थित क्षेत्र जिसे कूर्म या मूलाधार कहते हैं-एक विलक्षण प्रकार की आत्मा तड़ित का निवास स्थान है। यह महासर्पिणी की पूँछ वाला क्षेत्र हुआ। दूसरा सिरा मस्तिष्क के मध्य स्थित ब्रह्मरन्ध्र है जहां की बनावट इस प्रकार की है मानो एक विद्युत

का फौव्वारा छूट रहा हो अथवा एक केन्द्र के चारों ओर आरी के छोटे छोटे दांतें हो। इसे सहस्त्र कमल कहते हैं। इसे महासर्पिणी का फण वाला क्षेत्र कह सकते हैं। इन दोनों के बीच में जो सर्प की काया विद्यमान है वह सुषुम्ना प्रवाह है जो स्पायनल काड के अन्दर सूक्ष्म रूप में विद्यमान है तथा जिसके दोनों ओर इड़ा व पिंगला रूपी सतत प्रवाह गतिमान हैं।

जब किसी फुलझड़ी को जलाया जाता हैं तो चिनगारियां उड़ने लगती हैं। इसी प्रकार दोनों ध्रुव केन्द्रों के मिलन से, मूलाधार-सहस्रार के मिलन से संयोग से एक दिव्यधारा प्रवाहित होती है जिसे कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। समस्त सिद्धियों की बीज स्थली यह प्रवाह स्फुरित, जागृत व गतिमान होने पर साधक को अति समर्थ बनाता चला जाता है। इस विद्युत की तुलना में सारे संसार के बिजली घर, जो जड़ विद्युत उत्पन्न करते हैं, कहीं सानी नहीं रखते। शरीर का यह कुण्डलिनी विद्युत्भण्डार जड़ और चेतन, भौतिक और अत्मिक दोनों प्रकार की शक्तियों का अलौकिक समन्वित स्वरूप है।

मूलाधार केन्द्र शरीर के दक्षिणी ध्रुव प्रदेश को अग्नि स्वरूप माना गया है। कुण्डलिनी महाशक्ति का परिचय देते हुए कहा गया है कि वह अग्नि कुण्ड में सुप्त सर्पिणी की तरह पड़ी हुई है। दूसरी ओर उत्तरी ध्रुव सहस्रार चक्र को अमृत कलश कहते हैं। वहां से सतत् सोमरस प्रवाहित होने का उल्लेख मिलता है। इस अमृत स्राव का प्रवाह अधोमुखी है। यह कुण्डलिनी मूल तक जाता है। कुण्डलिनी जागरण का उद्देश्य है-प्रसुप्त पड़ी, विष उगल रही, वासना की जलन में तड़प रही सर्पिणी को अमृत रस का पान कराना, उसके प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनाना। इस अलंकारिक चित्रण के पीछे दर्शन यही है कि निरन्तर शक्ति अपव्यय के माध्यम से हम जिस प्रवाह को पतनोन्मुख बनाये रखते है, उसे योग साधना रूपी पुरुषार्थ से हम ऊपर भी उठा सकते हैं।

कुण्डलिनी के दो छोरों में मूलाधार के साथ 'कन्द' शब्द की चर्चा शास्त्रों में होती रहती है। स्थूल शरीर में इसका प्रतिनिधि है, सुषुम्ना का निचला सिरा कॉडा ईक्वाइना। कॉडा अर्थात् घोड़ा। मेरुदण्ड मस्तिष्क से प्रारम्भ होकर अन्तिम कोशिका तक जाता है व वहाँ समाप्त होकर धागों फाइबर फिलामेण्ट्स का स्वरूप ले लेता है। इन नाड़ी तन्तुओं से ही वह विद्युत्प्रवाह निकलता है जो मूलाधार स्थित चक्र संस्थान बनाता है। यही घोड़े की पूँछ के आकार का अवयव सूक्ष्म शरीर के 'कन्द' का प्रतिनिधि कहा जाता है। एनॉटामी विज्ञान की दृष्टि से यह मल-मूत्र छिद्रों का मध्य भाग है। मूलाधार का अर्थ जड़ सहायक मूलभूत शक्ति आधार। चूंकि यह सूक्ष्म है इस कारण अदृश्य है। यहीं प्राण का उद्गम केन्द्र है। इसके शरीर रचना विज्ञान के विस्तार में जाने का तो अभी अवसर है भी नहीं। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि प्रोस्टेट ग्लैण्ड, लम्बर-सेक्रल फ्लेक्सस (नाड़ी गुच्छक) जननेन्द्रिय अंग, सुषुम्ना का निचला हिस्सा (कॉडा इक्वाइना) तथा वहाँ स्थित ऑटोनामिक गेन्गलियान मिलकर जो जटिल रचना बनाते हैं वह अपने आप में एक जेनरेटर है। यहीं से खुला छोड़ने पर जीवनी शक्ति का अपव्यय तथा निरोध करने पर शक्ति संचय, स्फुरण तथा जागरण की प्रक्रिया होती है जो विभिन्न ध्यान योग की साधनाओं के सम्पुट से ऊर्ध्वगमन में परिणत होती है।

जीवन शक्ति, उमंगें, क्रिया शक्ति, उत्साह आदि का केन्द्रस्थल यही मूलाधार का कन्द कुण्ड है। यहाँ से जाज्वल्यमान ज्योति ऊपर उठती हुई स्वाधिष्ठान, मणिपूरित, नाभिचक्र, हृदय कमल के अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र , भ्रूचक्र , आज्ञा चक्र में विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित होती-सहस्रार चक्र में पहुँचती है। यहाँ पर रेटीकुलर एक्टीवेटिंग सिस्टम (चेतना के लिये उत्तरदायी संस्थान) को उत्तेजित कर वह प्रसुप्त पड़े केन्द्रों को जगाती है तथा सिद्धियों व ऋद्धियों का द्वार

खोलती है। योग कुण्डल्युपनिषद्, शारदा तिलक, ज्ञानार्णव तन्त्र, कुलार्णव तन्त्र, षटचक्र निरूपणम्, तन्त्रसार, शिव संहिता जैसे कुण्डलिनी शक्ति के माहात्म्य व जागरण जन्य परिणतियों के वर्णन से भरे पड़े हैं। कुण्डलिनी जागरण की साधना काम-बीज के प्रतीक मूलाधार और ज्ञान-बीज के प्रतीक सहस्रार के मिलन संयोग की दिव्य प्रक्रिया है। इस साधना में भौतिक व आत्मिक शक्तियों के स्वाभाविक पारस्परिक शिथिल सम्बन्धों को सघन बनाया जाता है। दोनों के मध्य आदान-प्रदान की गति तीव्र बनायी जाती है। मेरुदण्ड रूपी महामार्ग के माध्यम से महा प्रयाण की, ऊर्ध्वगमन की देवयान प्रक्रिया इसी साधना द्वारा सम्पादित की जाती है।

आत्मोत्कर्ष की साधना के अनेकानेक प्रसगों में विज्ञान सम्मत प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण की है। शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान तथा सूक्ष्म अध्यात्म विद्या के महत्वपूर्ण सिद्धांतों का इसमें अदभुत समावेश है। उच्चस्तरीय साधना-पथ पर चलने वाले हर साधक को इसकी समुचित जानकारी होना चाहिये।

***

-गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार